अध्याय–10

अथ स्वादिगणः

षु्‌ अभिषवे 1

ऋदन्तात् संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात् तङि। स्तरिषीष्टस्तषीष्ट। अस्तरिष्ट-अस्तत।

व्याख्याः अभिषव का अर्थ है स्नान करना, निचोड़ना, स्नान करना और सुरासन्धान अर्थात् सुरा निकालना–सोमलता का रस निकालना।

यह धातु उपदेश में षकारादि हैं इसका अकार इत्संज्ञक है, अतः यह उभयपदी है।

स्वादिभ्यः श्नुः 3.1.73

शपोवादः। सुनोति, सुनुतः, 'हुश्नुवोः-' इति यण-सुन्वन्ति। सुन्वः-सुनुवः। सुनुते, सुन्वाते, सुन्वते। सुन्वहे-सुनुवहे। सुषाव, सुषुवे। सोता। सुनु, सुनवानि, सुनवै। सुनुयात्। सूयात्।

व्याख्याः स्वादिगण के धातुओं से 'श्नु' प्रत्यय हो।

शप इति– यह 'श्नु' प्रत्यय 'शप्' का बाधक है, अतः स्वादि गण की धातुओं से शप् न होकर 'श्नु' होता है।

सुनोति–लट् में 'सु ति' इस दशा में प्रकृत सूत्र से 'श्नु' होने पर उसके उकार को सार्वधातुक गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

धातु के उकार को गुण नहीं होता क्योंकि बीच में 'श्नु' का व्यवधान है और 'श्नु' के ङिद्वत होने से तिन्नमित्तक गुण भी नहीं होता।

सुनुतः–लट् में 'सु तस्' इस दशा में 'श्नु' प्रत्यय होकर रूप बना। यहाँ शनु के उकार को गुण नहीं हुआ क्योंकि तस् अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् है।

सुन्वन्ति–झि में 'सु नु अन्ति' इस दशा में ङित् प्रत्यय परे होने से 'अचि श्नुधातुभ्रुवां–' से प्राप्त उवङ् को बाधकर 'हुश्नुवोः सार्वधातुके' से यण् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्र० सुनोषि, सुनुथः,।

उ० सुनोमि। **सुन्वः, सुनुवः**– लट् में 'सुनु वस्' इस दशा में 'लोपश्चस्यान्यतरस्यां म्वो' इससे वकार परे होने के कारण 'श्नु' के उकार का विकल्प से लोप होकर दो रूप बने।

इसी प्रकार मस् मं सुन्मः, सुनुमः, ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

सुनुते– आत्मनेपद लट् के त में श्नु प्रत्यय और टि को एकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

यहाँ त प्रत्यय के अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् होने के कारण 'श्नु' के उकार को गुण नहीं हुआ।

सुन्वाते–लट् आताम् में 'सुनु आताम्' में आताम् की टि 'आम्' को एकार और 'हुश्नुवोः सार्वधतुके' से 'श्नु' के उकारको यण् होकर रूप सिद्ध हुआ।

सुन्वते–लट् के झ में 'सु नु झ' इस दशा में अकार से पर न होने के कारण झ को 'आत्मनेपदेष्वनतः' सूत्र से अत् आदेश हुआ तब 'श्नु' के उकार को पूर्ववत् यण् होकर रूप बना।

शेष रूप –म० सुनुषे, सुन्वाथे, सुनुध्वे, सुन्वे।

सुन्वहे-सुनुवहे–'वहि' में भी 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः' से श्नु के उकार का विकल्प से लोप हुआ।

इसी प्रकार 'महि' में उकार का विकल्प से लोप होकर सुन्महे–सुनुमहे ये दो रूप बनते हैं।

सुषाव–लिट्, ति, णल्, द्वित्व अभ्यासकार्य और वद्धि होने पर अभ्यासोत्तर धातु के सकार का मूर्धन्य षकार होकर रूप बनाा।

शेष रूप–

प० प्र० सुषुवतुः, सुषुवुः।

म० सुषविथ–सुषोथ, सुषुवथुः, सुषुव।

उ० सुषाव–सुषव, सुषुविव, सुषुविम।

यहाँ वलादि प्रत्ययों में से थल् में भारद्वाज नियम से विकल्प से और शेष में क्राादिनियम से नित्य इट् हुआ।

सुषुवे–लिट्, त, एश् आदेश, द्वित्व और , उवङ् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

आ० प्र० सुषुवाते, सुषुविरे।

म० सुषुविषे, सुषुवाथे, सुषुविध्वे।

उ० सुषुवे, सुषुविवहे, सुषुविमहे।

वलादि प्रत्ययों में क्रादिनियम से नित्य इट् हुआ।

सोता–लुट् के प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप है।

लृट् में –सोष्यति, सोष्यते–आदि रूप बनेंगे।

लोट् में परस्मैपद प्र सुनोतु–सुनुतात्, सुनुताम्, सुन्वन्तु।

सुनु–लोट् के हि में 'सुनु हि' इस दशा में 'उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्' सूत्र से 'हि' का लोप होकर सिद्ध हुआ।

तम् में सुनुतम, त में–सुनुत–ये रूप बनते हैं।

सुनवानि–लोट् उत्तम पुरुष एकवचन में मि को नि आदेश और उसको आट् आगम होने पर 'सुनु आ नि' इस दशा में आट् के पित् होने से 'नु' के उकार को तन्निमित्तक गुण होकर अवादेश होने पर रूप बना।

वस् में–सुनवाव, मस् में सुनवाम।

सुनवै–आत्मनेपद के उत्तम पुरुष के एकवचन इट् में आट् होने पर श्नु के उकार को गुण, अव् आदेश आट् के आकार और प्रत्यय के ऐकार को, जो इकार को टि एत्व ओर 'एत ऐ' से बना है वद्धि ऐकार आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

लङ् पर०–

प्र० असुनोत्, असुनुताम्, असुन्वन्।

म० असुनोः, असुनुतम्, असुनुत।

उ० असुनवम्, असुन्व, असुन्म।

आ० प्र० असुनुत, असुन्वाताम्, असुन्वत।

म० असुनुथाः, असुन्वाथाम्, असुनुध्वम।

उ० असुन्वि असुन्वहि, असुन्महि।

सुनुयात्– यह रूप विधिलिङ् तिप् में यासुट् होने पर सकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

सूयात्– आशीर्लिङ् में यास् के सकार का संयोगादि लोप हुआ। और धातु के उकार को 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से दीर्घ होकर रूप बना।

आ० विधिलिङ्

प्र० सुन्वीत, सुन्वीयाताम्, सुन्वीरन्।

म० सोषीष्ठा; सोषीयास्थाम्, सोषीध्वम्।

उ० सोषीय, सोषीवहि, सोषीमहि।

आ० आशीर्लिङ्

प्र० सोषीष्ट, सोषीयास्ताम, सोषीरन्।

म० सोषीष्ठा; सोषीयास्थाम्, सोषीध्वम्।

उ० सुन्वीय, सुन्वीवहि, सुन्वीमहि।

स्तु-सु-धूभ्यः परस्मैपदेषु 7.2.72

एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु। असावीत्, असोष्ट।

व्याख्याः स्तु, सु और धूा धातुओं से पर सिच् को 'इट्' आगम हो, परस्मैपद प्रत्ययों के परे रहते।

अनिट् होने से इसके सिच् को इट् प्राप्त नहीं था।

असावीत्–लुङ्लकार में 'अ सु स् त्' इस अवस्था में प्रकृत सूत्र से सिच् को 'इट्' आगम हुआ, अपक्त तकार को ईट्, सिच् का लोप,इट् और ईट को सवर्ण दीर्घ, धातु के उकार को 'सिचि वद्धि–' सूत्र से वद्धि औकार होने पर उसको 'आव्' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप–

प्र० असावीत् असाविष्टाम्, असाविषुः।

म० असावीः, असाविष्टम्, असाविष्ट।

उ० असाविषम्, असाविष्व, असाविष्म।

असोष्ट– लुङ् आत्मनेपद में 'अ सु स् त' इस दशा में आर्धधातुक गुण, सिच् के सकार को मूर्धन्य षकार तथा प्रत्यय के तकार को ष्टुत्व टकार होकर रूप बना।

रूप–

प्र० असोष्ट असोषाताम्, असोषत।

म० असोष्ठाः, असोषाथाम्, असोध्वम्।

उ० असोषि, असोष्वहि, असोष्महि।

ल़ङ में–असोष्यत् आदि रूप बनेंगे।

चिा् चयने 2

चिनोति, चिनुते।

व्याख्याः चि (चुनना) – यह धातु भी िात् होने से उभयपदी है। अनुदात्तोपदेश होने से अनिट् है।

चिनोति– 'सुनोति' के समान सिद्ध होता है।

चिनुते–'सुनुते' के समान इसकी सिद्धि होती है।

विभाषा चेः 7.3.61

अभ्यासात् परस्य कुत्वं वा स्यात् सनि लिटि च। चिकाय-चिचाय, चिक्ये, चिच्ये। अचैषीत्, अचेष्ट।

व्याख्याः अभ्यास से पर 'चि' के काट को कुत्व हो विकल्प से सन् और लिट् परे रहते।

चिकाय– लिट् में 'चि चि अ' इस दशा में अभ्यास से पर भाग 'चि' के चकार को कुत्व हुआ तथा 'अचो णिति सूत्र से अजन्त–लक्षणा वद्धि और 'आय्' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ। कुत्व के अभाव पक्ष में चिचाय रूप बना।

रूप–

प्र० चिकाय–चिचाय चिक्युतुः–चिच्यतुः, चिक्युः–चिच्युः।

म० चिकेथ–चिकयिथ, चिचेथ–चिचयिथ, चिक्यथुः–चिच्यथुः, चिक्य–चिच्य।

उ० चिकाय–चिकय, चिचाय–चिचय, चिक्यिव–चिच्यिव, चिक्यिम–चिच्यिम।

थल् में अनिट् अजन्त होने से भरद्वाज नियम से वैकल्पिक तथा 'व' और 'म' में क्रादिनियम से नित्य इट् हुआ।

चिक्ये–चिच्ये–लिट् आत्मनेपद से प्र.पु.ए.व. में 'चि चि ए' इस स्थिति में विकल्प होने से दो रूप बने।

इसी प्रकार अन्य रूप भी बनते हैं, वलादि प्रत्ययों में क्रादिनियम से नित्य इट् होता है।

लुट्–चेता। लृट्–चेष्यति, चेष्यते। लोट्–चिनोतु, चिनुताम्। लङ्–अचिनोत्, अचिनुत। वि० लि०–चिनुयात्, चिन्वीत। आ० लि०—चीयात्, चेषीष्ट। लुङ् में 'अ चि स् त' इस दशा में अनिट् होने से इट् तो होता नहीं तब ईट् और 'सिच् वद्धिः परस्मैपदेषु' इस सूत्र से इगन्तलक्षणा वुद्धि तथा सकार को मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध होता है।

अचेष्ट– लुङ् आत्मनेपद में सिच, गुण, षत्व और ष्टुत्व होकर रूप बनता है।

उपसर्गों के योग में

सचि नोति–संग्रह करता है। अवचि नोति–नीचे की ओर से चुनता है।

निश्चिनोति–निश्चय करता है। उपचिनोति–बढ़ाता है।

उपचिनोति–घटता है। उच्चिनोति–ऊँचे से चुनता है।

स्ता् आच्छादने 3

स्तणोति, स्तणुते।

व्याख्याः स्तु (ढक देना)– यह धातु भी सेट् कारिका में परिगणित न होने से अनिट् है।

स्तणोति–'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' से नकार को णकार हो जाता है।

शर्-पूर्वाः खयः 7.4.61

अभ्यासात् शर्पूर्वाःखयः शिष्यन्ते। अन्ये हलो लुप्यन्ते। तस्तार, तस्तरतुः। तस्तरे। 'गुणोर्ति-'इति गुणःस्तर्यात्।

व्याख्याः शर्पूर्वा इति– अभ्यास के शर्पूर्व (जिनके पहले शर् हों) खय् शेष रहते हैं, अन्य हलों का लोप हो जाता है। यह 'हलादिः शेषः' का बाधक हैं 'स्त' धातु में द्वित्व होने पर 'हलादिः शेषः' से आदि हल् सकार का शेष रहना तथा अन्य हल् तकार का लोप प्राप्त था, उसको बाधकर प्रकृत सूत्र से शर् सकार पूर्व होने से खय् तकार शेष रहता है और अन्य हल् सकार का लोप हो जाता है।

तस्तार–लिट् में 'स्तर स्त अ' इस दशा में शरपूर्व खय् तकार के शेष रहने तथा अन्य हल् सकार तथा रकार के लोप होने पर 'ऋतश्च संयोगदेर्गुणः' से गुण होकर रूप बना।

लिट् के शेष रूप भी इसी प्रकार बनते हैं।

तस्तरे–लिट् आत्मनेपद में गुण 'ऋतश्च संयोगादेर्गुणः' से होता है।

लिट् के शेष रूप–

प० प्र० तस्तरु।

म० तस्तर्थ, तन्तरथुः, तस्तर।

उ० तस्तार–तस्तर, तस्तरिव, तस्तरिम।

ऋदन्त होने से थल् में इट् नहीं हुआ तथा 'व' और 'म' में क्रादिनियम से नित्य इट् हुआ।

आ० –प्र० तस्तरे तस्तराते, तस्तरिरे।

म० तस्तरिषे, तस्तराथे, तस्तरिध्वे।

उ० तस्तरे, तस्तरिवहे, तस्तरिमहे।

लुट्–स्तर्ता। लृट्–स्तरिष्यति, स्तरिष्यते। यहाँ 'ऋद्धनोः स्ये' से इट् हुआ। लोट्–स्तणोतु, स्तणुताम्। लङ्–अस्तणोत्–अस्तणुत। वि० लि०–स्तणुयात्, स्तणवीत।

स्तर्यात्– आशीर्लिङ् में 'स्त या त्' इस दशा में संयोगादि धातु होने से 'गुणोर्ति–संयोगाद्योः' से गुण होकर रूप बना।

ऋतश्च संयोगादेः 7.2.43

व्याख्याः ऋदन्त संयोगादि धातु से पर लिङ् और सिच् को 'इट्' आगम विकल्प से हो तङ् अर्थात् आत्मनेपद प्रत्यय परे रहते।

'स्त' को अनिट् होने से प्राप्त नहीं था अतः संयोगादि धातु होने से प्रकृत सूत्र से हो जाता है। विधिलिङ् के आत्मनेपद में सीयुट्के सकार का लोप हो जाने से इट् नहीं हो पाता। अशीर्लिङ् में सीयुट के सकार का लोप नहीं हो पाता। अतः उसको प्रकृत सूत्र से इट् हो जाता है।

स्तरीषीष्ट– अशीर्लिङ् में 'सत' सी–स् त' इस दशा में प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक इट् होने पर आर्धधातुक गुण, दोनों सकारों को मूर्धन्य षकार तथा तकार को ष्टुत्व टकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

स्तषीष्ट– पूर्वोक्त स्थल में जब इट् नहीं हुआ तब झलादि मिल जाने के कारण 'उश्च–१।२।१२।।' से लिङ् कित् हो गया, अतः गुण नहीं हुआ।

लुङ् परस्मैपद में–

प्र० अस्तार्षीत्, अस्तार्ष्टाम, अस्तार्षु।

म० अस्तार्षीः, अस्तार्ष्टम्, अस्तार्ष्ट।

उ० अस्तार्षम् अस्तार्ष्व, अस्तार्ष्म।

यहाँ इगन्तलक्षणा वद्धि होती है।

अस्तरिष्ट–अस्तत–लुङ् आत्मनेपद में 'ऋतश्च संयोगादेः' से इड् विकल्प होने से दो दो रूप बनते हैं। 'त' में इट् पक्ष में गुण हो जाता है। इडभाव पक्षों 'उश्च–१।२।१२' से सिच् के कित् हो जाने से गुण नहीं होता और 'ह्रस्वाद–अङ्गात्' से सिच् के सकार का लोप हो जाता है।

लृङ् में–अस्तरिष्यत्, अस्तरिष्यत। यहाँ 'स्य' को 'ऋदनोः स्ये' से इट् होता है।

उपसर्ग के योग में–

विस्तणोति–फैलाता है, विस्तर बिछाता है।

आस्तणोति–आसन बिछाता है।

आस्तणोति–आसन बिछाता है।

परिस्तणोति–बिछाता है।

धूञ् क म्पने 4

धूनोति, धूनुते। दुधाव; 'स्वरति-' इति वेट दुधविथ-दुधोथ।

व्याख्याः धू (कंपाना, हिलाना)—यद्यपि 'ऊद् ऋदन्तैः–' इत्यादि कारिका में दीर्घ ऊकारान्तों का परिगणन होने से यह ध ाातु सेट् सिद्ध होती है, तथापि विशेष रूप से विहित होने के कारण 'स्वरति–सूति–सूयति–धूञ्–ऊदितो वा' से वेट् हो जाती है। अतः वलादि आर्धधातुक में इसके दो दो रूप बनते हैं।

धूनोति, धूनुते ये रूप लट् परस्मैपद और आत्मनेपद में साधारण प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं।

दुधाव–लिट् परस्मैपद णल् में द्वित्व, अभ्यासकाग्र और अजन्तलक्ष्ज्ञणा।

दुधाव–लिट् परस्मैपद णल् में द्वित्व , अभ्यासकार्य और अजन्तलक्षणा वद्धि तथा आव् आदेश होने पर रूप सिद्ध होता है।

दुधविथ–दुधोथ–थल् में 'स्वरति–' इत्यादि सूत्र से वैकलिपक इट् होकर दो रूप बने हैं।

श्रयुकः किति 7.2.11

श्रिाः, एकांचः, अगन्ताच्च गित्-कितोरिण् न।

परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्याद् अनने निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमाद् नित्यमिट्। दुधुवे। अधावीत्, अधविष्ट-अधोष्ट। अधविष्यत्-अधोष्यत्, अधविष्यताम्-अधोष्यताम्, अधविष्यत-अधोष्यत। इति स्वादयः।

व्याख्याः श्रयुक इति–श्रि और एकाच् उगन्त धातु से पर गित् कित् वालदि आर्धधातुक को 'इट्' न हो।

परमपीति–यद्यपि 'स्वरतिसूति–' इत्यादि विकल्प पर है, तथापि उसको प्रकृत निषेध बाध लेता है ,क्यों कि इट् निषेध के सूत्र पहले कह गये हैं, यदि उनका अग्रिम सूत्रों से बाध हो जाय तो, निषेधसूत्र व्यर्थ हो जायेंगे, अतः निषेध प्रकरण के पहले प्रारम्भ करने के कारण 'स्वरति–' आदि विकल्प को बाधकर प्रकृत निषेध प्राप्त हुआ। उसको भी बाधकर क्रादिनियम से नित्य इट् होता है, तव दुधुविव, दुधुविम रूप सिद्ध होते हैं।

लिट् आ० दुधुवे। लुट् –धविता–धोता। लोट् –धविष्यति–धोष्यति। धविष्यते–धोष्यते। लोट् –धूनोतु, धूनुताम्। लङ्७अधूनोत्, अधूनुत। वि० लि–धूनुयात्, धून्वीत। आ० लि०– धूयात्, धविषीष्ट–धोषीष्ट।

अधावीत्–लुङ् परस्मेपद में 'अ धू स् त्' इस दशा में 'स्वरति–' इत्यादि व्स्वादिगण में यह प्रथम धातु है। यहाँ केवल चार धातुयें बताई गई हैं। चारों ाित् होने से उभपदी हैं।

स्वादिगण का विकरण 'श्नु' है–जैसा किआगे बताया जा रहा है। 'श्नु' प्रत्यय शित् होने से सार्वधातुक है और अपित् होने से ङित। अत एव एतन्निमित्तक गुण आदि नहीं होते।

यह अजन्त एकाच् धातु है और 'ऊद् ऋदन्तैः–' कारिका में संगहीत न होने से अनिट् है।'इट्' इङ् विकल्प प्राप्त था, उसको बाधकार 'स्तु–सु धूभ्यः परस्मैपदेषु' से नित्य इट् हो गया। तब ईट्, इगन्तलक्षणा वद्धि ओर आव् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप–

प्र० अधाषिष्टाम्, अधाविषुः।

म० अधावीः, अधाविष्टम, अधाविष्ट।

उ० अधाविषम, अधाविष्व, अधाविष्म।

अधविष्ट–अधोष्ट–लुङ् आत्मनेपद में स्वरत्यादि विकल्प से दो दो रूप बनते हैं।

ऌङ् में भी सर्वत्र 'स्य' के कारण दो दो रूप बनते हैं।

(स्वादिगण समाप्त।)